प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)



पहली बार : ३,०००
सितम्बर, १९५७
मूल्य : दो आना
(बारह नये पैसे)



मुद्रक :
ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ५२०७-१४

भूदान से ग्रामदान

जमीन पर से व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन और गॉव की कुल जमीन सारे गाँव की है, इन दोनो क्रान्तिकारी तत्त्वों की एक साथ शाति-पूर्ण प्रतिष्ठापना इस प्रक्रिया से होने के कारण ग्रामदान ने चारों ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। हालॉकि पहला भूमिदान अप्रैल १९५१ में मिला और पहला ग्रामदान मई १९५२ में, फिर भी ग्रामदान का व्यापक रूप सन् १९५५ में श्री विनोबाजी की उडीसा-पदयात्रा के दरमियान ही प्रकट हुआ। इस राज्य के कोरापुट जिले में उस साल के अन्त तक करीब छह सौ गॉवों ने ग्रामदान की घोषणा की थी।

१९५६ का अधिकाश समय श्री विनोबाजी तमिलनाड प्रदेश मे घूमे। कोरापुट प्रमुखतः आदिवासी क्षेत्र था। आदिवासियो मे पहले से ही गणभावना रही है और सभ्यता (?) से दूर रहने के कारण जमीन के मोह ने भी उनमें गहरी जड नही जमायी थी, इसलिए वहॉ ग्रामदान होना आसान था, पर गैर-आदिवासी क्षेत्र मे यह सम्भव नहीं होगा—ऐसी दलील बहुत से बुद्धिमान् लोग देते थे। पर ज्यो-ज्यों ग्रामदान-आदोलन आगे बढ़ा, शका का यह कारण भी दूर होता गया। सन् १९५६ के अन्त तक उडीसा मे जो पन्द्रह सौ से ऊपर ग्रामदान हुए थे, उनमें लगभग २५० गॉव गैर-आदिवासी और मिश्रित जनसख्यावाले थे तथा हिन्दुस्तान के दूसरे प्रातों मे भी सामान्य परिस्थितिवाले कई गाँवों का ग्रामदान तब तक हो चुका था। तमिलनाड में अपेक्षाकृत शिक्षित और विचारवान् लोग तथा कीमती जमीन—फिर भी सैकडों ग्रामदान वहॉ होते चले। इसी तरह महाराष्ट्र की 'कठिन' मानी जानेवाली भूमि मे भी ग्रामदानों का तॉता लग गया।

इस प्रकार कुल मिलाकर सन् १९५७ के शुरू होते-होते ऐसी भूमिका तैयार हो गयी थी, जिसके कारण यह विश्वास के साथ कहा जा सके कि 'ग्रामदान' सिर्फ कोई छिटपुट या विशेष परिस्थिति में ही हो सकनेवाली घटना नहीं थी, बल्कि जमाने की समस्या के समाधानकारक हल की ओर इशारा करनेवाली एक ठोस और व्यवहार्य प्रक्रिया थी। इस बात को ध्यान में रखकर ही १० मई १९५७ को कालडी (केरल) के सर्वोदय-सम्मेलन में अ० भा० सर्व-सेवा-सघ की ओर से 'भारत की जनता से, सारे राजनैतिक पक्षों और रचनात्मक कार्यकर्ताओं से अपनी सारी शक्ति ग्रामदान आदोलन को सफल बनाने में लगाने की अपील' की गयी, क्योंकि 'जीवन को नया पल्टा देनेवाले बड़े परिवर्तन की जो आकाक्षा भारतीय जनता के हृदय में उठी है, वह गाधीजी की कल्पना के ग्रामराज की स्थापना से ही पूरी हो सकती है और ग्रामदान में ही ग्रामराज के इस आदर्श को मूर्तरूप देने की ताकत है।'

भारत के प्रधानमत्री पण्डित जवाहरलालजी नेहरू ने भी ता० २९ अप्रैल १९५७ को मसूरी में विकास-अधिकारियों की सभा में बोलते हुए इस विषय पर जो उद्गार प्रकट किये, वे उल्लेखनीय हैं। उन्होंने कहा—"मै आचार्य विनोबाजी के इस उद्देश्य से सहमत हूँ कि जमीन सब लोगों की होनी चाहिए। भूदान-आन्दोलन में अब तक जो निष्पत्ति हुई है, खासकर जमीन के बारे में और जमीन पर व्यक्तिगत मालकियत की जो दुर्दमनीय भावना लोगों के दिलों में है, उसके बारे में इस आन्दोलन ने जो नयी मनोभूमिका तैयार की है, उसकी वजह से इस आन्दोलन का बड़ा महत्त्व है। चूँकि ग्रामदानी गाँवों में जमीन की व्यक्तिगत मालकियत के कारण पैदा होनेवाली समस्याएँ और कठिनाइयाँ नहीं रहतीं, इसलिए ये गाँव जमीन के तमाम साधनों को इकट्ठा करके उनका उपयोग करने और सहकारिता के तत्त्व को अमल में लाने की कोशिश करने के लिए सबसे उपयुक्त हैं।" हिन्दुस्तान के दूसरे भी भिन्न-भिन्न विचारवाले लोगों ने तथा प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने ग्रामदान के पीछे रही

हुई सम्भावनाओं को स्वीकार किया है। इस प्रकार, श्री विनोबाजी के शब्दों में ग्रामदान आज का 'युगधर्म' है।

ग्रामदान की हवा उत्तरोत्तर जोर पकड़ रही है। सन् १९५६ के अन्त में हिन्दुस्तान में करीब १७०० ग्रामदान हुए थे। अगस्त १९५७ के अन्त तक यह सख्या ३००० के करीब पहुँच गयी है। केरल राज्य में जहाँ जमीन काफी कीमती है और जनसख्या के अनुपात में बहुत कम भी है, वहाँ का आँकड़ा तीन सौ से ऊपर पहुँच गया है। अगस्त के अन्त तक भारत के विभिन्न राज्यों मे ग्रामदान की स्थिति इस प्रकार थी :

राज्य	ग्रामदान संख्या
असम	७७
आन्ध्र	७५
उत्कल	१८४७
उत्तर प्रदेश	१२
कश्मीर	०
केरल	३०१
पजाब हिमाचल प्रदेश	०
पश्चिम बगाल	८
बिहार	९७
बबई	२३७
मद्रास	२२३
मध्यप्रदेश	२६
मैसूर	१५
राजस्थान	१४

कुल जोड़—२९३२

ग्रामदानी गाँवों की संख्या के बारे में यह खुलासा कर देना जरूरी है कि इनमें कुछ इकाइयाँ ऐसी भी हैं, जो भौगोलिक या बस्ती की दृष्टि से एक हैं; पर सरकारी रेकार्डों के अनुसार 'रेवेन्यू विलेज' नहीं हैं। सरकारी

कागजों मे जो इकाइयाँ हैं, उनका भी कोई खास भौगोलिक या दूसरा निश्चित आधार नहीं है। समय-समय पर रद्दोबदल होते-होते कागजों पर कहीं कहीं ऐसी इकाइयाँ भी रह गयी हैं, जिनकी जमीनें एक-दूसरे से मिली हुई तथा तितर-बितर हैं। आबादी या रकबे (क्षेत्रफल) की दृष्टि से जैसे सरकारी कागजों के गाँवों में कोई समानता नहीं है, वैसे ही ग्रामदानी गाँवों में भी नहीं है।

भूदान-आन्दोलन की मूल-प्रेरणा

अक्सर लोग भूदान-आन्दोलन को उसके विशिष्ट नाम के कारण जमीन की समस्या के हल का ही आन्दोलन समझते हैं और इसलिए उन्हे लगता है कि ग्रामदान की बात अब कोई नयी चीज है। आन्दोलन की शुरुआत और उसके पिछले छह वर्षों के इतिहास पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भूमि-समस्या का हल तो एक निमित्त बना था, पर इसकी प्रेरणा इससे कहीं ज्यादा व्यापक और गहरी थी। अप्रैल १९५१ मे विनोबाजी कोई भूमि-समस्या के हल के लिए तेलगाना नहीं गये थे। वहाँ भी सवाल हिंसा की अपेक्षा अहिंसा की शक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करने का था। विनोबा के शब्दों में—"आज दुनिया की हालत उस बीमार की-सी है, जिसकी तबीयत किसी दिन कुछ अच्छी नजर आयी तो चिन्ता कुछ कम हो जाती है, किसी दिन फिर हालत खराब हुई कि चिन्ता बढ जाती है। दुनिया के महापुरुषों को इस बात की बडी चिन्ता है कि अशान्ति की ज्वाला प्रकट न हो। किन्तु इस रोगी का जो रोग है, वह एक बुनियादी या मूलभूत रोग है। ऊपर-ऊपर की दवा से चाहे रोगी को थोडी देर के लिए राहत मिले, पर उसे रोग से तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती, जब तक इस मूल रोग के परिहार का उपाय न ढूँढा जाय।

"यह विज्ञान का युग है। विज्ञान ने न सिर्फ मनुष्य के हाथ में शक्ति दी, बल्कि शक्ति के हाथ मे मनुष्य को भी दे दिया है। मनुष्य शक्ति का इस्तेमाल करे, यह एक हालत है। लेकिन शक्ति ही मनुष्य को नचाये,

उस पर मनुष्य का काबू न चले, उसका ही मनुष्य पर काबू चले, यह दूसरी हालत है। आज दुनिया इसी दूसरी हालत में पहुँची है, जिससे बड़ी गभीर स्थिति पैदा हो गयी है। आज सर्वत्र भय छाया है, सारी दुनिया भयभीत है। आदमी का विकास तभी होगा, जब यह भय मिटेगा—निर्भयता पैदा होगी। पर निर्भयता शस्त्रास्त्र बढा-बढाकर नहीं हो सकती। वह आत्मिक, नैतिक या अहिंसक शक्ति से ही आयेगी।

"हम नहीं मानते कि विज्ञान की खोजों को रोका जा सकेगा। उन्हे रोकने की जरूरत है, ऐसा भी हम नहीं समझते। हम इतना ही मानते है कि वह (विज्ञान) नैतिक शक्ति के मार्ग-दर्शन में रहे। विज्ञान के इस युग मे दो ही रास्ते हैं। विज्ञान तो हर हालत में बढेगा ही, लेकिन हम हिंसा को रोकेंगे तो वह लाभकारी दिशा मे बढेगा, नहीं तो उसका अन्त विनाश मे होगा। इसलिए हमे नैतिक शक्ति बढानी होगी। हिन्दुस्तान की तो हालत ही ऐसी है कि यहाँ नैतिक शक्ति ही बढ सकती है, दूसरी शक्ति नहीं। वह नैतिक शक्ति कैसे बढ़ेगी? हम कोई ग्रंथ पढ़ते हैं, कुछ शब्दो का जप करते है। इससे कुछ मानसिक बल मिल सकता है, लेकिन उतने से यह काम नहीं होगा। काम तो तब होगा, जब हमारे समाज के अत्यन्त महत्त्व के बड़े-बड़े मसले शान्ति के तरीके से, प्रेम से या अहिंसा की ताकत से हल हो।

"इसी बारे मे सोचते-सोचते मुझे यह भूदान-यज्ञ सूझा। अवश्य ही यह बात सहज ही सूझ गयी। उस बारे में मेरा चिन्तन तो वर्षों से चलता रहा था। गाधीजी के प्रयाण के बाद मे शरणार्थियों और मेव लोगो की सेवा के लिए दिल्ली पहुँचा। पश्चिम पाकिस्तान से जो शरणार्थी आये, उनमें हरिजन भी बहुत थे। हरिजनों ने जमीन की माँग की। इस बारे मे कुछ चर्चा हुई। आखिर पजाब सरकार की तरफ से आश्वासन दिया गया कि हम हरिजनो के लिए कुछ लाख एकड़ जमीन देगे। किन्तु उसके एक-दो महीने बाद दूसरी ही बात सुनने को मिली कि यह नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध मे जो दलील दी गयी, वह बलवान् थी या दुर्बल, इसमे मै नहीं

पड़ूँगा। लेकिन इतना तो सच है कि जो एक वादा किया गया, वह टूट गया। हरिजन भाई इससे बहुत दुःखी हुए। मेरे मन में तभी से यह सुप्त भावना रही कि कोई ऐसी युक्ति सूझनी चाहिए, जिससे बे-जमीनों को जमीन मिले। इसी प्रसुप्त भावना को तेलंगाना में मौका मिल गया और एक आन्दोलन आरम्भ हो गया।

"यह (जमीन) का एक ऐसा मसला है, जो बहुत ही बुनियादी है। हिन्दुस्तान के लिए तो है ही, लेकिन एशिया के दूसरे देशों के लिए भी है। ऐसे मसले को अगर हम अहिंसक तरीके से कुछ हल कर सकें, तो उससे अहिंसा की ताकत—नैतिक शक्ति बढ़ेगी। इसी दृष्टि से मैंने इसकी तरफ देखा है। भूदान-यज्ञ से बे-जमीनों को जमीन मिलती है, एक मसला हल होता है। इस काम का जितना महत्त्व है, उससे बहुत ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि एक तरीका हाथ में आया। अहिंसा की शक्ति निर्माण करने की एक युक्ति हमारे हाथ लगी। आप इसी दृष्टि से इस काम की ओर देखिये।" (मझपुर, ९-५-'५५)

भूदान-आन्दोलन की शुरूआत के पीछे क्या प्रेरणा थी, वह ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए गांधीजी ने जो तरीका काम में लिया था, वही तरीका, वही शक्ति हमारे दूसरे मसले हल करने के काम में लायी जाय, जिससे उस शक्ति का, नैतिक शक्ति का पूरा आविष्कार हो और दुनिया को शांति की राह मिले। तेलंगाना में मालिक-मजदूरों में जो द्वेष-भाव था, उस तात्कालिक समस्या को हल करने के लिए जमीनवालों से जमीन माँगकर बे-जमीनों को देने से शुरुआत हुई। फिर छठे हिस्से जमीन की माँग की गयी। बाद में बड़े भूमिवान् अपने लिए छठा हिस्सा रखकर बाकी का समाज को अर्पण करें, यह कहा गया। और आखिर मे गाँव की सारी जमीन गाँव की है, उस पर व्यक्ति की मालकियत नहीं रहनी चाहिए यानी ग्रामदान होना चाहिए—यहाँ तक हम पहुँचे। यह सब व्यावहारिक दृष्टि से आरोहण की एक-एक सीढ़ियाँ थीं, पर कहाँ पहुँचना है, यह शुरू से ही स्पष्ट था।

पहली मंजिल का आखिरी कदम

ग्रामदान से जमीन का मसला हल होने का अचूक रास्ता मिला। साथ ही इस बात का भरोसा भी हुआ है कि यह काम अहिंसक ढग से या प्रेम के तरीके से हो सकता है। पर ग्रामदान भी आखिरकार हमारी पहली मजिल का ही आखिरी कदम है। अभी आगे और भी मजिलें बाकी हैं। सच तो यह है कि ग्रामदान से हमारे असली काम की शुरुआत होती है या हो सकती है और वह काम है गाधीजी के स्वप्न के उस समाज की रचना, जिसका आधार प्रेम की शक्ति हो, जिसमें किसीका शोषण न हो, जिसमे ऊँच नीच जातियाँ, गरीब-अमीर आदि का भेद-भाव न हो, ग्रामदान से इस आगे के काम की राह खुल जाती है। आज ग्राम-विकास के जितने भी कार्य हम हाथ में लेते है, उनमें दो कमियाँ हर जगह हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। पहली बात तो यह है कि इन कामों में गॉववालों की जैसी चाहिए, वैसी दिलचस्पी हम जाग्रत नहीं कर पाते। गॉववालो का पूरा और हार्दिक योग न होने से ये सारे विकास के काम ऊपर-ऊपर रह जाते है, आगे नही बढ पाते—उनमे जान नहीं आती। दूसरी कमी यह रहती है कि जो विकास का काम होता भी है, उसका फायदा गॉव के चन्द लोगो तक ही सीमित रह जाता है। आर्थिक सीढी के सबसे नीचे के पाये पर जो नितान्त गरीब, साधनहीन, प्रभावहीन व्यक्ति है, उन तक उसकी गरमी पहुँच नहीं पाती। पर आज गॉव मे साधन-सम्पन्न और साधनहीन व्यक्तियों के बीच जो यह हित-विरोध है, उसका ग्रामदान से बहुत हद तक निराकरण हो जाता है, जमीन की बुनियादी विषमता मिटकर भाईचारा बढता है। इसलिए फिर गॉव के विकास का लाभ सबको मिलता है। गॉव के मसले खुद गॉववालो को हल करने चाहिए, वे हल कर सकते हैं, यह भावना भी जाग्रत होती है और इसलिए विकास-कार्यों मे उनकी दिलचस्पी अपने-आप पैदा हो जाती है। गाँव मे एक नैतिक वातावरण तैयार हो जाता है। हिन्दुस्तान के ५ लाख गाँवों मे रहने-

वाले ३० करोड़ लोगों के जीवन को ऊँचा उठाने के लिए ग्रामदान एक राजमार्ग खोल देता है।

ग्रामदान के बाद का अनुभव

क्या सचमुच जहाँ ग्रामदान हुए हैं, वहाँ ऐसी भावना बन गयी है? लोगों में भाईचारा बढ़ा है? गाँव एक परिवार है, यह अनुभूति उनमें आयी है? —सब गाँवों में स्थिति एक-सी होगी, यह तो शायद ही कोई अपेक्षा रखता होगा! सदियों के पुराने संस्कार, स्वार्थ की ओर मनुष्य का स्वाभाविक रुझान, आसपास के लोगों का और वातावरण का बुरा असर —ये सब प्रतिकूलताएँ होते हुए भी जितने गाँवों ने ग्रामदान का कदम उठाया है, वह क्या कम आश्चर्य की बात है या कम आशाजनक चिह्न है? कुछ गाँवों में प्रतिक्रिया ने विजय पायी है, लोगों ने ग्रामदान वापस लिया है। पर ऐसे गाँवों की संख्या नगण्य है। कहीं-कहीं बँटवारे के वक्त स्वार्थ की पुरानी भावनाएँ फिर उभड़ी हैं, ऐसा भी हुआ है। ग्रामदान के बाद और जमीन सबको मिल जाने के बाद भी कई जगह पुरानी स्थिति में विशेष अंतर नहीं आया है, यह भी सही है। पर ये सब बातें तो इतना ही साबित करती हैं कि ग्रामदानी गाँवों के लोग भी हम-आप जैसे साधारण मनुष्य हैं। भावनाओं का उतार चढ़ाव उनमें भी आता है। उनके हृदय में भी देवासुर-संग्राम चलता रहता है। अपने आपको पढ़ा-लिखा और सुसंस्कृत कहनेवाले लोग अगर पुराने संस्कारों और स्वार्थों को आसानी से नहीं छोड़ पाते, छोड़कर भी मौका पड़ने पर बार-बार फिसल जाते हैं, तो जिन्हें वे पग पग पर गँवार, मूर्ख और असंस्कृत कहते और समझते हैं, उनसे इसके विपरीत बहुत बड़ी आशा क्यों रखते हैं?

ताज्जुब तो सचमुच में यह है कि भूदान-ग्रामदान-आन्दोलन ने किस तरह लोगों की स्वार्थभावना के मजबूत किले को तोड़ा है और उनके हृदयों में भाईचारे की सोयी हुई भावनाओं को जगा दिया है। उत्तर प्रदेश का 'मँगरौठ' पहला ग्रामदानी गाँव है। आरंभ के एक-डेढ़ बरस में वहाँ

जो उतार-चढाव आये, बाहर के निहित स्वार्थवाले लोगों ने और उस गॉव के लोगो के अपने स्वार्थ ने जिस तरह बार-बार जोर मारा और जिस तरह वहॉ के लोगो ने इन पर विजय पायी, यह सारा सचमुच रोमाच-कारी इतिहास है। ग्रामदान के वक्त मॅगरोठ में १०७ परिवार थे, जिनमे ६७ के पास जमीन थी। ४० बिल्कुल बे-जमीन और उनमे से १३ परिवार तो ऐसे थे, जो या तो बेगार से या खेतिहर मजदूरी की नाममात्र की कमाई पर बसर करते थे। आज वहॉं खेती करने की इच्छा रखनेवाले हर परिवार को खेत मिला हुआ है, करीब ८६ एकड परती जमीन तोडकर नयी आबाद की गयी है, गॉववालों के सामूहिक श्रम से एक बडा तालाब गॉववालो ने खोदा है, छोटी-छोटी बॅधिया बॉधी है, पुल, मकान, सडक बनाये है। फलो के लिए गॉव का सम्मिलित बगीचा लगाया है। व्यक्तिगत खेती मे भी तरक्की की है। और इन सबके फलस्वरूप जहॉ चार साल पहले गॉव मे सिर्फ ६ या ज्यादा-से-ज्यादा ८ महीने खाने जितना अन्न पैदा होता था, वहॉं आज अपने खाने के लिए सालभर का पूरा अन्न वे पैदा करते है। सन् १९५३-५४ में जहॉ गॉव की कुल उपज १६७६ मन थी, वहॉ १९५५-५६ मे वह ३३८२ मन अर्थात् दुगुनी हो गयी। अब लोग कपड़े के मामले मे गॉंव को स्वावलम्बी करने में जुटे है। पहले ८ महीनों मे गॉव मे ९१६ वर्ग गज कपडा तैयार हुआ है। गॉव मे एक नयी चेतना आयी है। गॉव के लोगो को महसूस होने लगा है कि वे अपनी किस्मत आप बना सकते है।

इसी तरह उडीसा के कोरापुट जिले मे जहॉ व्यापक ग्रामदान हुए है, लोगो ने खुद जमीन के बॅटवारे के सिद्धान्त तय किये, योजनाऍ बनायीं। हालॉंकि खेती के लिए जमीन बॅंटी है, पर मालिकी गॉंव की रही है। समय समय पर ग्रामसभा जमीन का पुनर्वितरण कर सकती है। कई गॉवो मे लोगो ने सामूहिक खेती के लिए जमीनें अलग रखी हैं, जिनमें सब मिल-कर खेती करते है और उसकी उपज गॉव के सामूहिक कामों के लिए सुरक्षित रखते है।

दूसरे प्रदेशों में भी जगह-जगह निर्माण और विकास का काम लोगों ने उठाया है। बाहरी मदद भी मिली है और मिल रही है। कहीं-कहीं लोगों ने वैसी आशा भी रखी है। तमिल्नाड (मद्रास) की सरकार ने ग्रामदानी गाँवों की कर्ज की समस्या हल करने के लिए इसी वर्ष बारिश के पहले २० लाख रुपया खासतौर से तकावी के रूप में बाँटा है। पर अधिकाश में गाँव के लोग समझ गये हैं कि 'ईश्वर भी उन्हींकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करने के लिए उठ खड़े होते हैं।' बिहार में सर्व-सेवा-सघ के प्रधान केन्द्र खादीग्राम के पास ग्रामदानी गाँवों ने अपनी पूँजी से 'धर्मगोले' (अन्न भडार) बनाये हैं, बीज इत्यादि का सग्रह शुरू किया है, ग्रामदान के पहले अलग-अलग परिवारों पर जो कर्ज था, उसका भी बँटवारा कर लिया है, उसकी अदायगी का जिम्मा ग्रामसभा ने लिया है, शादी-विवाह के खर्च में भी सब गाँववालों ने हिस्सा बँटाया है। शुरू-शुरू में 'महाजनों' ने आगे के काम के लिए कर्ज देना बन्द कर दिया था। उन्हें इकट्ठा करके ग्रामदान-आन्दोलन का तत्त्व समझाया गया, उन्हें भी गाँव समाज की भलाई के लिए आगे आना चाहिए, वे भी उसी समाज के अंग हैं, आदि बातों का तत्त्व उन्हें बताया गया। इसका असर अच्छा हुआ। उन्होंने पिछले कर्ज में भी काफी छूट दी तथा आगे के लिए सहयोग का आश्वासन दिया।

ऊपर कुछ बातें केवल मिसाल के तौर पर गिनायी गयी हैं। अच्छी-बुरी मिसालें तो हर जगह मिलेंगी। मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है। बुराई खोजनेवाले को किसी भी आन्दोलन मे छिद्र नजर आ जायेंगे। उसी तरह आगे के काम के लिए प्रेरणा खोजनेवाले को आशा के स्थल भी बहुत मिल जायेंगे। यह भी इन बातों से स्पष्ट हो जायगा कि ग्रामदान मे काम खतम नहीं होता, बल्कि उसके बाद ही सही माने मे असली काम की शुरुआत होती है।

ग्रामनिर्माण की योजना

तो, ग्रामदान के बाद गाँवों मे क्या-क्या काम किस तरह करना है,

वहाँ के काम की क्या योजना है, ये सवाल स्वाभाविक ही उठते है। खासकर यह कि ग्रामदान के बाद वहाँ खेती का नक्शा क्या होगा? क्या जमीन का फिर से बँटवारा होगा, या सहकारी और सम्मिलित खेती होगी?

निश्चय ही परस्पर सहयोग और सहकारिता सर्वोदय-विचार का केन्द्र-बिन्दु है। मौजूदा प्रतिस्पर्धात्मक (Competitive) समाज की जगह हम परस्पर सहयोगाश्रित (Co-operative) समाज बनाना चाहते हैं। इसी तरह व्यक्तिगत मालकियत पर आधारित सग्रह-वृत्ति (Acquisitiveness) की जगह समाज के लिए समर्पण (Sacrifice) की भावना लोगों में पैदा हो, यह हमारा लक्ष्य है। पर जिस तरह हमने देखा कि सिर्फ ऊपर से बनायी हुई योजनाएँ, बनानेवाले की नीयत कितनी ही अच्छी क्यों न हो, गाँववालों मे जान नहीं डालतीं, उसी तरह सिर्फ कागजी सहकारिता (Formal-Co-operatives) हमें ज्यादा आगे नहीं ले जायगी। इसलिए ग्रामदान के बाद खेती का ढग—पैटर्न—क्या हो, यह गाँववालों पर ही छोड़ना जरूरी है। हाँ, सहकारिता के फायदे तो हमे उनके सामने रखने ही चाहिए। इस समय ग्रामदानी गाँवों मे (१) सम्पूर्ण व्यक्तिगत खेती से लगाकर कुछ जमीन सार्वजनिक खेती की तथा बाकी की व्यक्तिगत खेती की या (२) कुछ परिवारो की व्यक्तिगत खेती और कुछ की सम्मिलित व सहकारी खेती, (३) कुल गाँव की एक सहकारी खेती या एक ही गाँव में दो-चार सहकारी खेती मण्डलियाँ या (४) सारे गाँव की सामूहिक खेती—इस तरह के भिन्न-भिन्न प्रयोग शुरु हुए हैं और चल रहे हैं।

ग्रामदान के बाद अगर सही दिशा में कदम बढ़ता है, तो कुछ बातें तो स्पष्ट ही वहाँ पहले से भिन्न होती हैं। जमीन की मालकियत व्यक्ति की न रहकर गाँव की हो जाती है। खेती के लिए जमीन बाँटी गयी हो, तो भी उस पर व्यक्ति का अधिकार नहीं कायम होता, ग्राम-सभा को

अधिकार रहता है कि वह समय-समय पर जमीन का पुनर्वितरण कर सके। सिंचाई तथा फसलों की योजना सामूहिक बनती है, साधनों में सहकार बढता है, जमीन के कटाव को रोकने की योजनाएँ, जगल की रक्षा और उपयोग की योजनाएँ इन सबके लिए रास्ता खुल जाता है।

खेती की उपज बढाना आज देश की एक प्रमुख आवश्यकता है। साथ ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था की ओर हमारा कदम बढे, समाज मे आज जो आर्थिक विषमता है, वह उत्तरोत्तर कम हो और एक सम-समाज की स्थापना हो—सही माने में समाजवादी व्यवस्था कायम हो, यह भी देश के सब प्रगतिशील लोग चाहते हैं। उत्पादन बढा, मगर साथ ही गरीबी-अमीरी का भेद भी बढा, अगर गरीब ज्यादा गरीब बना और अमीर और ज्यादा अमीर, तो उस उत्पादन-वृद्धि की कोई कीमत नहीं। इतना ही नहीं, वह राष्ट्र को नुकसान पहुँचानेवाली साबित होती है। अतः **उत्पादन-वृद्धि और विषमता का अन्त, इन दोनों का मेल बिठाना ही हमारी सारी राष्ट्रीय योजनाओं की कसौटी है।** ग्रामदान से यह मेल पूरा सधता है। सबको मिलकर काम करना है और बाँटकर खाना है, इस भावना के कारण सबमें काम करने का जोश पैदा होता है। विकास की भूख जाग्रत होती है। पर उस विकास से विषमता बढने की गुञ्जाइश खतम हो जाती है। विकास का नतीजा सपन्न को ज्यादा संपन्न बनाने का न होकर उसका फायदा सबको मिलता है। मँगरौठ में किस तरह खेती का सुधार हुआ, परती जमीन आबाद हुई, सिंचाई का इन्तजाम हुआ और २ वर्ष में खेती की उपज दुगुनी हो गयी, यह हमने प्रत्यक्ष देखा। कोरापुट मे तथा दूसरी जगहों के ग्रामदानी गाँवों में या जहाँ भूदान मे भूमिहीनों को जमीन मिली, वहाँ का अनुभव भी यही है। गया जिले के शेखवारा गाँव मे भूमिहीनों ने भूदान मे मिली १२५ बीघा परती जमीन तोडी और दूसरे ही वर्ष उस गाँव मे एक हजार मन फसल की बढोतरी हुई।

इस तरह ग्रामदान के बाद खेती-सुधार का और उपज बढाने का

काम आसान हो जाता है और वही आमदानी गाँवों में पहला काम होना चाहिए। खेती-सुधार में दूसरी बातों के साथ पशु-पालन, खासकर गो-नसल-सुधार का काम भी तुरन्त हाथ में लेना चाहिए। गो-वंश का जो ह्रास हो रहा है, उसकी ओर तुरन्त ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। वरना खेती-सुधार के हमारे प्रयत्न बेकार साबित हो सकते हैं।

ग्रामनिर्माण में दूसरी मुख्य बात पिछले कर्जे तथा आगे के काम के लिए आवश्यक पूँजी के सम्बन्ध की है। अन्त में जाकर तो गाँव का काम गाँव की पूँजी से ही चलना चाहिए और चल सकता है, इस दृष्टि से हर गाँव में कम-से-कम दो साल की खपत जितने अनाज का संग्रह होना जरूरी है। खाने-कपडे में स्वावलम्बी हो जाने पर बाहरी कर्ज या पूँजी की आवश्यकता भी बहुत कम पड़ेगी। तब तक के लिए सरकारी सूत्रों से, को-ऑपरेटिव बैंकों से तथा साहूकारों आदि से आवश्यक कर्जे का प्रबन्ध करना होगा।

तीसरी चीज जो गाँव के आर्थिक शोषण को रोकने और गाँववालों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए जरूरी है, वह है गाँव की 'सहकारी दूकान', इसीलिए कोरापुट की योजना में सर्व-सेवा-संघ ने इस चीज को काफी महत्त्व दिया है। गाँव का आयात-निर्यात तथा व्यापार इसी सहकारी भंडार के मार्फत होने से गाँव की बहुत-सी बचत हो सकती है।

चौथी चीज ग्रामोद्योगों की है। खाने का अधिकांश स्वावलम्बन तो गाँव में होता ही है, कपड़े में भी गाँव जल्दी-से-जल्दी स्वावलम्बी बने, यह योजना होनी चाहिए। श्री विनोबाजी की तमिल्नाड की यात्रा में इस प्रकार के 'ग्राम-संकल्प' कई गाँवों ने किये कि अमुक समय के बाद वे बाहर से कपड़ा नहीं मँगायेंगे। अपनी जरूरत का कपड़ा गाँव में ही बना लेंगे। इसी तरह गाँव में जो दूसरा कच्चा माल पैदा होता है और जिसकी तैयार चीजों की खपत भी वहाँ होती है, वैसे सब उद्योग वहाँ विकसित करने चाहिए। खेती में कितना भी सुधार हो, हमारी मौजूदा और

वढती हुई जनसख्या को ध्यान में रखते हुए सिर्फ जमीन की उपज से गॉव कभी समृद्ध नही हो सकता। दूसरे कारणों को छोड दें, तब भी कम-से-कम हमारी आज की परिस्थिति में ग्रामोद्योग अत्यन्त जरूरी हैं।

पॉचवीं बात तालीम की योजना की है। आज गाँवों में तालीम का इन्तजाम नहीं के बराबर है। कोरापुट तथा दूसरी जगहों के प्रत्यक्ष काम का अनुभव यही आया है कि गाँवों की आज की स्थिति में क्या बच्चो की और क्या बडों की, तालीम की योजना बहुत कुछ काम के साथ ही करनी होगी। पुरानी तालीम की बुराइयाँ वैसे भी सर्वविदित हैं। अत' ग्रामदानी गाँवों में हमें बुनियादी या नयी तालीम की पद्धति पर काम शुरू करना होगा।

छठी मुख्य बात यह है कि ग्रामदानी गाँव में ऐसा वातावरण और योजना बनानी चाहिए कि गाँव के झगड़े गाँव के बाहर न जायँ। उनका निपटारा वहीं हो जाय। मुकदमेबाजी में गॉव की जितनी बरबादी होती है और गाँववालों की लूट होती है, वह जाहिर है। गाँव को कुछ भी ऊपर उठाना हो, तो इसे रोकना अत्यन्त जरूरी है।

इसके अलावा आरोग्य-योजना आदि और भी कई काम है। वास्तव मे तो गॉव के समूचे जीवन को ऊँचा उठाने की बात है। पर न तो सब काम एक साथ हो सकते हैं, न सब एक-से जरूरी हैं, इसलिए परिस्थिति, शक्ति और साधनों के अनुसार प्राथमिकता के आधार पर ही काम हाथ में लेने होंगे।

ग्राम-व्यवस्था

गॉव के इन सारे कामों के सचालन की क्या व्यवस्था होगी, क्या माध्यम होगा, ग्राम-सगठन की रचना किस तरह की होगी?

गॉवों मे प्रत्यक्ष जन-तन्त्र (Direct Democracy) के प्रयोग का खुला मौका है। जनतन्त्र की आज की चालू पद्धति प्रातिनिधिक (Representative) है। गाँव, जिले, राज्य या केन्द्र किसी भी

स्तर पर लोग सीधे 'फक्शन' नहीं करते, बल्कि कामों के सचालन के लिए अपने प्रतिनिधि चुनते हैं। इस पद्धति में यह दोष है कि जनता निष्क्रिय हो जाती है, प्रतिनिधियो को चुनकर वह अपने काम को खतम हुआ समझती है। फिर जनता की खुद की प्रत्यक्ष भलाई के कामो में भी उसे सक्रिय करने के लिए ऊपर से कोशिश करनी पड़ती है। सत्ता का दुरुपयोग भी तो होता ही है। पर जब तक व्यवस्था केन्द्रित है, तब तक प्रतिनिधियो के जरिये उसका संचालन लाजिमी हो जाता है। गॉवों मे यह जरूरी नहीं है, इसलिए यह दोष टाला जा सकता है।

अतः गॉव के सारे कामो के सचालन की जिम्मेदारी गाँव के १६ वर्ष से ऊपर उम्रवाले सारे स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित ग्राम-सभा पर होनी चाहिए। जब कभी कोई नया मसला सामने आये या गॉव के काम के बारे में कोई नया फैसला करना हो, तो ग्राम-सभा मिले। ग्राम-सभा का एक आमत्रक या संयोजक हो, जो सभा बुलाने का काम करे। कामों की जिम्मेदारी उन उन कामों के लिए बनायी हुई अस्थायी समितियों (Ad-hoc Committees) को सौपी जा सकती है। पर अमुक निश्चित अवधि तक ग्रामसभा की ओर से गॉव का काम चलाने के लिए पचायत या कार्य-समिति नियुक्त करना उचित नहीं होगा। ग्राम-सभा के या कामो के संचालन के बारे में आवश्यक नियम वगैरह ग्रामसभा ही बनाये। गाँव के झगडों का फैसला ग्राम-सभा में हो, किसी मामले में आवश्यक समझे, तो ग्राम-सभा पच मुकर्रर कर दे।

खेती, उद्योग या व्यापारसम्बन्धी आर्थिक कामो के लिए आवश्यकतानुसार सहकारी समिति बनायी जा सकती है, पर जहॉ तक हो सके, गाँवो मे सस्थाओं की बहुलता नहीं होनी चाहिए।

काम की कठिनाइयाँ

ग्रामदान के बाद के काम मे कुछ कठिनाइयॉ महसूस हुई है। इन कठिनाइयों का कारण या तो कार्यकर्ताओ की अपनी कमी रही है या

बाहर के लोगों द्वारा ग्रामदान के नये मूल्यों को पूरा न समझने की बात रही है। ग्रामदान-भूदान के विचार ने कई मान्यताओं की बुनियादें बदल दी है, जो जल्दी से लोगों की समझ में नहीं आती हैं। मुख्य बात तो जमीन पर व्यक्तिगत मालकियत की ही है। मँगरौठ का ग्रामदान हुआ। वहाँ की जमीन का कोई मालिक नहीं रहा। सारी जमीन गाँव की हो गयी। पर जब लगान लेने का वक्त आया, तो माल विभाग के अधिकारियों की यह समझ में ही नहीं आया कि लगान सारे गाँव से सम्मिलित कैसे लिया जाय। उनके कागजों में तो जमीन व्यक्तियों के नाम पर ही लिखी हुई थी। जमीन आखिर किसी-न-किसीकी तो होगी, वरना लगान वसूल किससे होगा आदि शकाएँ उनके मन में उठती रहीं। कानून भी वैसा ही था। उधर मँगरौठ-वालों ने साफ कह दिया कि जमीन सारे गाँव की मालिकी की है। गाँव ही लगान देगा। बात बढी, गाँव के लोगों को सामूहिक लगान देने के अपने अधिकार को मनवाने के लिए जेल भी जाना पडा। फिर उच्च अधिकारियों तक बात पहुँचने पर मामला साफ हुआ। सामूहिक लगान देने की इजाजत मिली। उत्कल सरकार ने तो अब कानून में सशोधन करके सामूहिक लगान दिया जाना स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, वैसा करनेवाले गाँव को लगान की १० प्रतिशत छूट मिलती है।

इसी तरह की दूसरी कठिनाई करीब-करीब सब जगह यह आयी है कि ग्रामदान हो जाने पर साहूकारों ने ही नहीं, सरकारी अधिकारियों ने, को ऑपरेटिव बैंकों आदि ने भी गाँववालों को कर्ज देना बन्द कर दिया, क्योंकि पहले तो कर्जे की सुरक्षा जमीन की थी, अब जमीन तो व्यक्ति की रही नहीं, सारे गाँव की हो गयी। ग्रामदान करना मानो एक तरह से गुनाह हो गया। इस प्रकार कर्जे (Credit) का स्रोत बद हो जाने से ग्रामदानी गाँवों मे एक बडी समस्या खडी हो गयी है। आशा है, इस कठिनाई का निराकरण भी जल्दी हो जायगा। साहूकारों को समझाने का काम तो कार्यकर्ताओं ने जगह-जगह उठाया है कि पहले तो एक व्यक्ति की ही जिम्मेदारी कर्ज लौटाने की थी, अब वह जिम्मेदारी सारे गाँव की

सम्मिलित है, इसलिए ज्यादा सुरक्षा है। वात साहूकारो के समक्ष मे भी आने लगी है। सरकारी दफ्तरों, बैंकों आदि के लिए ज्यादा औपचारिक (Formal) कार्रवाई जरूरी है। ग्राम-सभा को कानूनी मान्यता प्राप्त करानी या गाँव की सहकारी समिति बनाना शायद सामूहिक रूप से कर्ज लेने के लिए जरूरी होगा। पर सरकार और बैंकों आदि को भी फसल के आधार पर व्यक्तियो को कर्जा देना मुश्किल नहीं होना चाहिए। ग्रामदानी गाँवों मे कोशिश तो यह रहेगी कि कोई व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कर्जा न ले, ग्राम-सभा के मार्फत ही ले। ग्रामदान का कानून बनाकर व्यक्तिगत की जगह जमीन पर गाँव की सामूहिक मालकियत के विचार को तथा ग्राम-सभा को मान्यता देना जरूरी है। पर कानूनी खानापूरी न हो, तब तक भी ग्रामदानी गाँवों की पूँजी (Credit) सम्बन्धी अड़चन तुरन्त दूर करना आवश्यक है।

तीसरी कठिनाई साधनो के अभाव की है। गाँवों के लोग, खासकर अब तक के भूमिहीन लोग अत्यन्त गरीब और साधनहीन रहे हैं। सच तो यह है कि आर्थिक शोषण ने ही उनकी यह दयनीय दशा की है। जमीन तो भूदान-ग्रामदान के कारण मिल गयी, पर हल, बैल, बीज, कुआँ आदि का क्या हो ? इनके अभाव में खेती कैसे हो ? गाँव मे जो साधन उपलब्ध हैं, उनका आपस मे मिल-जुलकर उपयोग तो करते है, पर कुल मिलाकर ही साधन कम हैं। खेती पर ही समाज जिन्दा है; खेतिहर की आज की दशा भी समाज के शोषण द्वारा ही ऐसी हुई है, तो क्या ये साधन उन तक पहुँचाना समाज का कर्तव्य नहीं है ? समाज, जिसमे सरकार भी शामिल है, इस कर्तव्य को जरूर पहचानेगा और जिस तरह भी हो, उसे पूरा करेगा, ऐसी आशा है।

पर मुख्य कठिनाई तो ग्रामदानी गाँवो मे बैठकर जनता के साथ एकरूप होकर काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की है। भारत के ५ लाख गाँवों के पुनरुज्जीवन का काम हम सबके लिए और हमारे पुरुषार्थ के लिए एक चुनौती है। डॉक्टर, इञ्जीनियर, खेती-विशेषज्ञ, उद्योगप्रवीण,

बाहर के लोगों द्वारा ग्रामदान के नये मूल्यों को पूरा न समझने की बात रही है। ग्रामदान-भूदान के विचार ने कई मान्यताओं की बुनियादें बदल दी हैं, जो जल्दी से लोगों की समझ में नहीं आती हैं। मुख्य बात तो जमीन पर व्यक्तिगत मालकियत की ही है। मँगरौठ का ग्रामदान हुआ। वहाँ की जमीन का कोई मालिक नहीं रहा। सारी जमीन गाँव की हो गयी। पर जब लगान लेने का वक्त आया, तो माल विभाग के अधिकारियों की यह समझ में ही नहीं आया कि लगान सारे गाँव से सम्मिलित कैसे लिया जाय। उनके कागजों में तो जमीन व्यक्तियों के नाम पर ही लिखी हुई थी। जमीन आखिर किसी-न-किसीकी तो होगी, वरना लगान वसूल किससे होगा आदि शकाएँ उनके मन में उठती रहीं। कानून भी वैसा ही था। उधर मँगरौठ-वालों ने साफ कह दिया कि जमीन सारे गाँव की मालिकी की है। गाँव ही लगान देगा। बात बढी, गाँव के लोगों को सामूहिक लगान देने के अपने अधिकार को मनवाने के लिए जेल भी जाना पडा। फिर उच्च अधिकारियों तक बात पहुँचने पर मामला साफ हुआ। सामूहिक लगान देने की इजाजत मिली। उत्कल सरकार ने तो अब कानून में सशोधन करके सामूहिक लगान दिया जाना स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, वैसा करनेवाले गाँव को लगान की १० प्रतिशत छूट मिलती है।

इसी तरह की दूसरी कठिनाई करीब-करीब सब जगह यह आयी है कि ग्रामदान हो जाने पर साहूकारों ने ही नहीं, सरकारी अधिकारियों ने, को ऑपरेटिव बैंकों आदि ने भी गाँववालों को कर्ज देना बन्द कर दिया, क्योंकि पहले तो कर्जे की सुरक्षा जमीन की थी, अब जमीन तो व्यक्ति की रही नहीं, सारे गाँव की हो गयी। ग्रामदान करना मानो एक तरह से गुनाह हो गया। इस प्रकार कर्जे (Credit) का स्रोत बद हो जाने से ग्रामदानी गाँवों में एक बडी समस्या खडी हो गयी है। आशा है, इस कठिनाई का निराकरण भी जल्दी हो जायगा। साहूकारों को समझाने का काम तो कार्यकर्ताओं ने जगह-जगह उठाया है कि पहले तो एक व्यक्ति की ही जिम्मेदारी कर्ज लौटाने की थी, अब वह जिम्मेदारी सारे गाँव की

सम्मिलित है, इसलिए ज्यादा सुरक्षा है। बात साहूकारो के समक्ष मे भी आने लगी है। सरकारी दफ्तरो, बैंकों आदि के लिए ज्यादा औपचारिक (Formal) कार्रवाई जरूरी है। ग्राम-सभा को कानूनी मान्यता प्राप्त करानी या गॉव की सहकारी समिति बनाना शायद सामूहिक रूप से कर्ज लेने के लिए जरूरी होगा। पर सरकार और बैंकों आदि को भी फसल के आधार पर व्यक्तियो को कर्जा देना मुश्किल नहीं होना चाहिए। ग्रामदानी गॉवों मे कोशिश तो यह रहेगी कि कोई व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कर्जा न ले, ग्राम-सभा के मार्फत ही ले। ग्रामदान का कानून बनाकर व्यक्तिगत की जगह जमीन पर गॉव की सामूहिक मालकियत के विचार को तथा ग्राम-सभा को मान्यता देना जरूरी है। पर कानूनी खानापूरी न हो, तब तक भी ग्रामदानी गॉवों की पूॅजी (Credit) सम्बन्धी अडचन तुरन्त दूर करना आवश्यक है।

तीसरी कठिनाई साधनों के अभाव की है। गाँवों के लोग, खासकर अब तक के भूमिहीन लोग अत्यन्त गरीब और साधनहीन रहे हैं। सच तो यह है कि आर्थिक शोषण ने ही उनकी यह दयनीय दशा की है। जमीन तो भूदान-ग्रामदान के कारण मिल गयी, पर हल, बैल, बीज, कुआँ आदि का क्या हो ? इनके अभाव में खेती कैसे हो ? गॉव में जो साधन उपलब्ध हैं, उनका आपस में मिल-जुलकर उपयोग तो करते हैं, पर कुल मिलाकर ही साधन कम हैं। खेती पर ही समाज जिन्दा है; खेतिहर की आज की दशा भी समाज के शोषण द्वारा ही ऐसी हुई है, तो क्या ये साधन उन तक पहुँचाना समाज का कर्तव्य नहीं है ? समाज, जिसमें सरकार भी शामिल है, इस कर्तव्य को जरूर पहचानेगा और जिस तरह भी हो, उसे पूरा करेगा, ऐसी आशा है।

पर मुख्य कठिनाई तो ग्रामदानी गाँवो मे बैठकर जनता के साथ एकरूप होकर काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की है। भारत के ५ लाख गाँवो के पुनरुज्जीवन का काम हम सबके लिए और हमारे पुरुषार्थ के लिए एक चुनौती है। डॉक्टर, इञ्जीनियर, खेती-विशेषज्ञ, उद्योगप्रवीण,

कलाकार—सबकी कुशलता और शक्ति की माँग उन करोड़ों बे-जबानों की तरफ से है, जो सदियों से ज्ञान प्राप्ति के अवसर से वंचित रहे हैं और शोषित रहे हैं। नये भारत और नये समाज के निर्माण का मौका हमारे सामने है। आशा है, हम उसके अनुरूप सिद्ध होंगे।

युग-धर्म

पर इस सारे निर्माण की बुनियाद तो, जैसा हमने देखा—ग्रामदान है। ग्रामदान के बाद ही यह सारा काम फलदायी होगा। और ग्रामदान का मतलब, गाँववालों द्वारा स्वेच्छा से जमीन की मालकियत का विसर्जन और परिवार-भावना का स्वीकार। जब चारों तरफ समाज में स्वार्थ और लालच ने घर कर रखा है, तब सामान्य लोगों से इतने त्याग की अपेक्षा करना उचित होगा क्या? पर लोगों ने खुद ही हमारी आशंका को झूठा साबित कर दिया है। हजारों लोगों ने जमीन की मालकियत छोड़ी है, लाखों ने भूमिदान दिया है। यह सब कैसे हो रहा है, इसका कारण भी स्पष्ट है। सहयोग और सहजीवन ही आज के युग की माँग है। अर्थात् इनके बिना अब मानव का जीवन दूभर हो रहा है। एक दूसरी भी विशेष परिस्थिति है जिसके कारण ग्रामदान और उस पर आधारित गाँवों के पुनरुद्धार का काम जरूरी हो गया है। दुनिया में तीसरे महायुद्ध के बादल मँडरा रहे हैं। कहा नहीं जा सकता किस समय युद्ध छिड़ जाय। अगर ऐसा हुआ, तो देश की सारी आर्थिक व्यवस्था पर असर पड़ना अनिवार्य है। ऐसे समय गाँव-गाँव कम-से कम अन्न और वस्त्र के मामले में स्वावलम्बी होंगे तभी हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग, जो गाँवों मे रहते हैं, विनाश से बच सकेंगे और देश में शान्ति तथा व्यवस्था कायम रह सकेगी जो सुरक्षा के लिए जरूरी है। इसलिए जैसा विनोबा ने कहा है एक 'डिफेन्स मेजर'—सुरक्षा के कार्यक्रम के तौर पर भी ग्रामदान आवश्यक है, क्योंकि गाँवों के विकास का काम इस बुनियादी कदम के बाद ही सम्भव हो सकेगा।

अतः सब दृष्टियों से ग्रामदान का काम आज का युगधर्म है, जन-मानस के हृदय की आकांक्षा है। इसलिए मुश्किल दिखाई देनेवाला यह काम सहज हो भी रहा है। विनोबा के शब्दों में—"कठिन काम भी आसान हो जाता है, जब वह युग-धर्म बन जाता है। एक-एक युग में एक-एक धर्म प्रवृत्त होता है। जैसे-जैसे युग बढ़ता है, वैसे-वैसे धर्म का रूप नूतन होता रहता है। धर्म नया-नया रूप लेता है, तो देश को नयी-नयी प्रेरणा, नयी-नयी स्फूर्ति होती है। इसलिए समाज में चैतन्य का संचार होता है। पुराने लोगों को जो चीज अशक्यप्राय मालूम होती थी, वह इस जमाने में शक्य मालूम होती है; क्योंकि वह युग-धर्म के अनुकूल है।

"हवा तैयार है। बस, लोगों के पास पहुँचने में जितनी देर लगेगी, उतनी ही देर बाकी है!"

१० मई, १९५७ को कालडी (केरल) में हुए सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर स्वीकृत अ० भा० सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव

भूदान आरोहण में आज हम एक महत्त्वपूर्ण मुकाम पर आ पहुँचे हैं। शुरू से ही उसका लक्ष्य केवल भूमि-समस्या के हल का नहीं, बल्कि समाज-परिवर्तन की बुनियादी क्रांति का था। दुनिया एक कुटुम्ब बनकर रहे, यह आज के युग की आकांक्षा है। युग की आकांक्षा में जब विधायक पुरुषार्थ मिलता है, तब क्रांति होती है। गांधीजी ने अपने जीवन में एक ऐसी क्रांति करके दिखलायी। उन्होंने स्वतन्त्रता की आकांक्षा के साथ सत्याग्रह के पुरुषार्थ को जोड़ा। उसके कारण न सिर्फ भारतवर्ष को आजादी मिली, बल्कि राजनैतिक क्षेत्र में भी अहिंसा का प्रवेश हुआ।

गांधीजी के इस क्रांतिकारी कार्य का अगला चरण भूदान-यज्ञ के रूप में हम सबके सामने आया। भूदान-यज्ञ के जरिये अहिंसा ने आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश पाया और भ्रातृत्व की मानवीय आकांक्षा एक नये पुरुषार्थ के साथ जुड़ गयी। मानव के प्रति मानव की करुणा के प्रत्यक्ष व्यवहार से श्री विनोबाजी ने देश की बुनियादी समस्या को एक अनोखे ढंग से हल करने का कदम उठाया। जब पड़ोसी भूखा हो, तो हम कैसे खा सकते हैं, इस भावना से लोगों ने भूदान देना शुरू किया। एक वर्ष के बाद सर्व-सेवा-संघ ने विनोबाजी के मार्गदर्शन में इस काम को देशभर में फैलाने की जिम्मेदारी उठायी। देश के पाँच लाख गाँवों में कम-से-कम एक-एक भूमिहीन परिवार को जमीन मिले, इस दृष्टि से दो वर्ष में पच्चीस लाख एकड़ भूमि इकट्ठी करने का संकल्प किया गया। इस संकल्प की कालावधि पूरी होने से पहले ही भारत की जनता ने उससे अधिक जमीन दे दी। साथ ही-साथ भूदान-यज्ञ का क्षितिज भी व्यापक हो गया। इस अहिंसात्मक प्रक्रिया के जरिये देश में भूमिहीनता मिटाने का लक्ष्य भूदान-कार्यकर्ताओं के सामने स्पष्ट हो गया और देश के एक करोड़ भूमिहीन परिवारों को खेती लायक जमीन मिले, इस दृष्टि से पाँच करोड़ एकड़

भूमि प्राप्त करने का लक्ष्यांक स्थिर किया गया। इस संकल्प की पूर्ति होने से पहले ही भूदान-आरोहण ऐसी मंजिल पर पहुँचा, जिसके कारण इस आन्दोलन की क्रान्तिकारी शक्यताएँ स्पष्ट हो गयीं। देश के ढाई हजार गाँवों के लोगों ने प्रेमपूर्वक, स्वेच्छा से अपनी जमीन की व्यक्तिगत मालिकी मिटाकर ग्रामदान किया। स्पष्ट है कि ग्रामदान की फलश्रुति के बाद पाँच करोड़ एकड़ जमीन इकट्ठी करने का संकल्प अब देश की तमाम जमीन पर से व्यक्तिगत मालिकी के विसर्जन के लक्ष्य में स्वाभाविक ही समा जाता है।

अतः हमें अपनी सारी ताकत अब ग्रामदान के काम में लगानी है। सन् '५७ का वर्ष भारत के इतिहास में एक अनोखा महत्त्व रखता है। इस वर्ष में भारत के जीवन को नया पल्टा देनेवाला बड़ा परिवर्तन होगा, ऐसी आकांक्षा भारतीय जनता के हृदय में उठी है। यह आकांक्षा गांधीजी की कल्पना के ग्रामराज की स्थापना से ही पूरी हो सकती है और ग्रामदान में ही ग्रामराज के इस आदर्श को मूर्तरूप देने की ताकत है। इसलिए हम सबको ग्रामदान आन्दोलन को अग्रसर करने में ही अपनी शक्ति लगा देनी चाहिए। आज ग्रामदान के विचार ने एक ठोस रूप ले लिया है और देश के तमाम राजनैतिक पक्षों तथा विचारकों ने इस विचार का स्वागत किया है।

तीसरे महायुद्ध के द्वार पर खड़ी हुई दुनिया को प्रेम-मन्त्र देने का एक अत्यन्त व्यवहार्य कार्यक्रम आज भूदान, ग्रामदान-आन्दोलन के रूप में भारत के सामने है। जब तक भारत में ग्रामराज की स्थापना न हो, तब तक अखण्ड घूमते रहने की श्री विनोबाजी ने प्रतिज्ञा की है। देश की तमाम ताकत यदि ग्रामदान के आन्दोलन को सफल करने में लग जाती है, तो सन् '५७ के ऐतिहासिक वर्ष में ही इस महान् क्रान्ति का सम्पन्न होना सम्भव है। परिस्थिति में जो त्वरा की आकांक्षा है, उसका अनुभव करते हुए हम भारत की जनता से—सारे राजनैतिक पक्षों और विशेषकर रचनात्मक कार्यकर्ताओं से—अपनी सारी शक्ति ग्रामदान-आन्दोलन को सफल बनाने में लगाने की अपील करते हैं।

विभिन्न प्रान्तों के भूदान का लेखा : दिसम्बर, १९५६ तक

१ नाम प्रान्त	२ भूमि-प्राप्ति (एकड)	३ भूदाता सख्या	४ भूमि- वितरण (एकड)	५ भू-आदाता (सख्या)	६ विशेष विवरण
१ आसाम	१५५१	१११८	६६	१३४	
२. तेलगाना-आध्र	२३७२७८	१६९४३	४४३६२	१०६९३	
३. उत्कल	३४३११८	१०२६९५	९४२७८	१७३३४	
४. उत्तरप्रदेश	४६५११०३	२६४५२	१२५६५५	४०७६७	
५ कश्मीर	—	—	—	—	
६. केरल	२९०५६	४७०६	२२६१	१३७८	
७. पजाव हिमाचल	१८८७३	४४३६	१५३५	४३२	
८. विहार	२१५४८७८	२९६४८९	१६११३८	७५९७८	
९. पश्चिम वगाल	१२२१०	७९९४	२८२३	२३९४	
१०. वम्बई	२३७२६९	४५११४	७२११४	१२८५०	
११ मद्रास	७२०४७	२३६१५	—	—	
१२ मध्यप्रदेश	१६८८६३	४९३४०	२९५८८	७२४९	
१३. मैसूर	२४२३२	५५८९	१९०१	४५७	
१४ राजस्थान	४०९६७६	७४१२	३१८५१	५१०६	
कुल योग	४१७४२३४	५९११९०३	५६७५७२	१७४७६८	